भारतीय मतदाता के बचाव में
In Defense of the Indian Voter

नीलांजन सरकार
Neelanjan Sircar
February 10, 2014

जैसे-जैसे लोकसभा के चुनाव नज़दीक आते जा रहे हैं, हमारा ध्यान फिर से भारतीय मतदाता की ओर खिंचने लगा है. मीडिया, विद्वज्जन और नीति-निर्माता अक्सर यह गलत धारणा पालने लगते हैं कि भारतीय मतदाता अपेक्षाकृत नासमझ है और केवल अल्पकालीन लक्ष्यों को ही देखता है और उसे बहुत आसानी से मूर्ख बनाया जा सकता है. उदाहरण के लिए भारतीय चुनाव आयोग के हाल ही के आह्वान पर विचार किया जा सकता है, जिसमें आयोग ने अनुचित प्रभाव के डर से चुनाव से पहले लोगों की राय लेकर जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) जारी करने या वोट बैंक की राजनीति पर मीडिया की लगातार छपने वाली कहानियों और सरकार द्वारा घोषित लोक-लुभावने उपहारों पर प्रतिबंध लगाने की बात कही थी. भारतीय चुनाव मंडल के प्रति ऐसे निराशाजनक दृष्टिकोण का कारण खास तरह की चुनौतियों वाले भारत के प्रति वह अंदरूनी धारणा है कि यह देश भयानक गरीबी से लेकर कट्टर सामाजिक वर्ण-व्यवस्था तक का शिकार होने के कारण एक स्थायी और परिपक्व लोकतंत्र के रूप में विकसित होने में सक्षम नहीं है.

यह बात तर्कसंगत तो लगती है, लेकिन इसके विपरीत भी बहुत से साक्ष्य हैं. सरकारी प्रलोभनों के प्रति भारी असंतोष के बावजूद इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि इससे चुनावी परिणाम पर कोई प्रभाव पड़ता है. असल में भारत के सांसद "सत्ता में रहने के कारण बहुत घाटे" में रहते हैं. सन् 1991 के बाद की अवधि में अर्थशास्त्री लेई लिंडन ने यह अनुमान लगाया था कि वर्तमान सांसद जब दुबारा चुनाव लड़ते हैं तो पहली बार चुनाव लड़ने वाले सत्ता से बाहर रहने वाले सांसद के मुकाबले उनके जीतने के 14 प्रतिशत अवसर वास्तव में कम हो जाते हैं. अगर चुनावी प्रलोभनों का मतदाताओं पर सचमुच असर होता तो वर्तमान सांसदों के जीतने की ज़्यादा संभावना होती, क्योंकि सत्ता में आने के बाद मतदाता उनसे ज़्यादा लाभान्वित हो पाते. इसके अलावा दल और प्रत्याशी दोनों के ही बदल-बदल कर आने से ऐसा लगता है कि राजनीतिज्ञ इधर-उधर की बातों में उलझने के बजाय भारतीय मतदाता का ज़्यादा ख़्याल रखने लगे हैं.

इसी प्रकार चुनावी परिणाम पर आम तौर पर जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) या मीडिया के पक्षपात का भी कोई असर नहीं होता. यदि मीडिया एजेंसियाँ अपने पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) को सचमुच ही प्रभावित करती हैं तो जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) कभी-भी एक-दूसरे से मेल नहीं खा सकते और यही कारण है कि समग्र रूप में वे निष्प्रभावी हो जाते हैं. अगर जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) आपस में मेल भी खाते हों तो भी मतदाता उनके अनुरूप वोट डालने के लिए विवश नहीं हैं, जैसा कि 2004 और 2009 के लोकसभा के चुनावों में कांग्रेस के पक्ष में समर्थन को कम आँकने के कारण नाटकीय रूप में हुआ था.

सच तो यह है कि भारतीय मतदाता को न तो ख़रीदा जा सकता है और न ही आसानी से बहकाया जा सकता है. इसका अर्थ यह नहीं है कि कुछ लोग इस प्रकार के बहकावे में बिल्कुल ही नहीं आते. लेकिन आँकड़ों से यह प्रमाणित नहीं होता कि राजनैतिक व्यवस्था में इस प्रकार की प्रवृत्ति का कोई विशेष हाथ होता है.

सचमुच ही भारत एक अद्भुत स्थायी लोकतंत्र के रूप में विकसित हो गया है. राजनैतिक वैज्ञानिक अर्नेड लिज़फ़र्ट द्वारा लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के उपायों के आधार पर लिये गये निर्णय के अनुसार सन् 1977 से जिन तेतीस देशों में लगातार लोकतांत्रिक व्यवस्था चल रही है, भारत उनमें से एक है. इन तेतीस देशों का प्रति व्यक्ति औसत सकल घरेलू उत्पाद अर्थात् जीडीपी $33,464 डॉलर है. इस दृष्टि से भारत सर्वाधिक गरीब देश है और इसकी साक्षरता-दर भी सबसे कम है. भारत का प्रति व्यक्ति औसत सकल घरेलू उत्पाद अर्थात् जीडीपी $3,843 डॉलर और साक्षरता-दर 73 प्रतिशत है.

कई विद्वानों का दावा है कि वही चुनाव-मंडल लोकतंत्र को अच्छी तरह से चला सकता है जो वित्तीय दृष्टि से समृद्ध हो और सुशिक्षित हो. मूल तर्क यह है कि नागरिक जब तक पर्याप्त रूप में शिक्षित नहीं होगा तब तक समझदारी से जटिल राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत सही प्रत्याशी का चुनाव नहीं कर सकेगा और जब तक आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं होगा तब तक धनी कुलीन लोगों के प्रलोभनों से अपने-आपको बचा नहीं पाएगा. लेकिन भारत इस दृष्टि से बिल्कुल हटकर है. तो भारतीय मतदाता की स्वतंत्रता को कैसे परिभाषित किया जाए ?

सबसे पहली बात तो यह है कि भारत में सच्चे अर्थों में गुप्त मतदान की व्यवस्था है. CSDS द्वारा किये गये 2009 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (NES) के अनुसार अध्ययन में भाग लेने वाले केवल 13 प्रतिशत मतदाता ही यह मानते हैं कि स्थानीय राजनीतिज्ञ आम तौर पर यह जान पाते हैं कि लोग मतदान केंद्रों में जाकर किसे वोट देंगे. यह बात बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि अगर स्थानीय नेता भी नागरिकों के मतदान की सीधी निगरानी नहीं कर सकते तो किसी ख़ास नेता के पक्ष में मतदान का लाभ भी पक्के तौर पर आँका नहीं जा सकता. गुप्त मतदान का यही लाभ है. मतदाता लाभों की परवाह किये बगैर ही किसी के पक्ष में भी मतदान कर सकता है. वस्तुतः राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (NES) से पता चलता है कि जनमत सर्वेक्षण (ओपीनियन पोल) में भाग लेने वाले 71 प्रतिशत मतदाता मानते हैं कि भले ही उन्हें किसी से भी लाभ मिलते हों, लेकिन लोग मतदान अपनी इच्छा से ही करते हैं.

दूसरी बात यह है कि भारतीय मतदाताओं ने राजनीतिक प्रणाली के बारे में अलग-अलग तरह की सूचनाएँ पाने और उनके आधार पर समझदारी से निष्कर्ष निकालने के अनेक तरीके ईज़ाद कर लिये हैं. पिछले कुछ दशकों में समाचार माध्यमों से सामने आने वाले खुलासों में नाटकीय वृद्धि होने के अलावा नागरिक रेलगाड़ी या बस में यात्रा करते हुए या चाय-स्टॉल पर हर रोज़ ही अनेक राजनैतिक सूचनाएँ पा लेते हैं. आज भारतीय मतदाताओं से उम्मीद की जा सकती है कि वे पक्षपात-पूर्ण और परस्पर विरोधी प्रकृति की भारी सूचनाओं को छाँट कर उसमें से सही सूचनाओं को निकाल सकें.

भारी मात्रा में सामने आने वाली सूचनाओं के ढेर में से काम की बातें निकालने के लिए मतदाता अपने निजी नैटवर्क अर्थात् खास तौर पर अपने परिवार से भी मदद ले लेते हैं. राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (NES) के अनुसार जो लोग किसी दल या प्रत्याशी को समर्थन देने का फैसला करने से पहले किसी से सलाह-मशविरा करते हैं, उनमें से 60 प्रतिशत लोग मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों पर ही निर्भर करते हैं. राजनीति पर चर्चा करने के लिए परिवार ही सर्वाधिक स्वाभाविक स्थल है, क्योंकि परिवार के सदस्य किसी न किसी रूप में एक-दूसरे पर निर्भर होने के कारण मतदान के स्वरूप में भी परस्पर समन्वय कर लेते हैं और राजनीतिक पसंद को भी साझा कर लेते हैं. परिवार के अंदर ही चर्चा होने के कारण मतदाता अपना समूह भी बना लेते हैं और अपने परिवार के अधिक प्रबुद्ध सदस्यों की मदद से अपने हितों को तर्क से मिल-जुलकर समझने की कोशिश करते हैं. यह तो कुछ समय से ज़ाहिर ही है कि भारतीय मतदाता के व्यवहार में परिवार का प्रभाव सर्वाधिक है. नृवंशविज्ञानी M.N. श्रीनिवास और A.M. शाह द्वारा कराये गये 1967 और 1971 के आम चुनावों के व्यापक अध्ययन से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि मतदाता अपने परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर ही मतदान करते हैं और मतदान की प्रक्रिया में जाति के बजाय परिवार ही उन्हें एकजुट करके रखता है. सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि परिवार की सामूहिक समझ-बूझ ही उनकी शिक्षा की कमी को पूरा कर देती है.

इस विरोध के बावजूद भी भारत एक स्थिर और परिपक्व लोकतंत्र के रूप में विकसित हो गया है. मतदाताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे न केवल अपनी स्वतंत्र समझ-बूझ रखते हैं, बल्कि अपने हितों को मतदान केंद्र के ज़रिये प्रकट करने में भी सक्षम हैं. यह उन लोगों के लिए तो सचमुच ही अद्भुत है, जो यह मानते हैं कि भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिए सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करना ज़रूरी है. ख़ैर समस्याएँ तो रहेंगी ही. राजनैतिक वर्गों में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रमाण मौजूद हैं और अपराधी प्रवृत्ति के विधायकों की संख्या में वृद्धि सबके लिए चिंता का विषय है. अगर आम आदमी पार्टी के आकस्मिक उदय से हमने कोई पाठ सीखा है तो मतदाता अपनी समझ-बूझ से व्यापक परिवर्तन भी ला सकते हैं. बस हमें सही निर्णय करने के लिए उन पर भरोसा करना होगा.

नीलंजन सरकार ‘ कैसी ’ के विज़िटिंग डिज़र्टेशन रिसर्च फ़ैलो हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>